गोविंद सदाशिव घुर्ये

मुंबई विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग का कार्यभार संभालने वाले प्रथम भारतीय विद्वान थे इन्हें भारत के समाजशास्त्र के पिता की उपाधि से विभूषित किया गया । घुर्येने गिड्स के निर्देशन में एक नगरीय केंद्र के रूप में मुंबई विषय पर एक लेख लिखा। उन्होंने अपने शोध कार्य को एस.सी. हेड्डुन के निर्देशन में पूरा किया, जो 1932 में भारत में जाति और प्रजाति के नाम से प्रकाशित हुआ। घुर्ये मुंबई विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग की नीवं को मजबूत करने वाले प्रमुख शिल्पकार रहे हैं।

घुर्ये ने शेक्सपियर से लेकर साधुओं पर, कला, नृत्य वेशभूषा तथा वास्तुकार से लेकर देवी-देवताओं पर सेक्स तथा विवाह से लेकर प्रजाति जैसे अनेक विषयों पर लिखा है।घुर्ये ने सांस्कृतिक तथा संस्थापक पक्षों जैसे जाति, परिवार, विवाह, धर्म आदि विषयों के उदय एवं विकास के साथ-साथ सांस्कृतिक संबंधों की प्रक्रिया में नगरों की भूमिका जैसे विषयों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

घुर्ये ने भारतीय समाज और संस्कृत के उद्भव का ही नहीं, अपितु भारतीय समाज की वर्तमान समय की समस्याओं तथा सामाजिक तनाव का भी सारगर्भित एवं प्रमाण सहित अध्ययन किया। इस संबंध में मुंबई के मध्यम वर्ग के व्यक्तियों कि कामवृत्ति संबंधी आदतों का अध्ययन (1938) किया।

घुर्ये ने अध्ययनों में प्रसार वादी परिप्रेक्ष्य के साथ भारत विद्या शास्त्र इंडोलॉजी उपागम का प्रयोग किया भारतीय संस्कृति और समाज के विभिन्न पक्षों के अन्वेषण में उन्होंने भारत विद्या शास्त्र के स्रोतों का उपयोग किया है उनका भारतीय साधुओं (1964), धार्मिक चेतना (1965), तथा दो ब्राह्मणवादी संस्थाओं के रूप में गोत्र एवं चरण (1972) नामक अध्ययनों में भारत के पौराणिक एवं कई धार्मिक ग्रंथों का प्रयोग किया है।

घुर्ये ने अपने कई अध्ययनों में अत्याधुनिक सर्वेक्षण विधि और सांख्यिकी तकनीक (सेक्स की आदतों का अध्ययन , 1938), तथा महादेव कोली लोग (1963) के अध्ययन में क्षेत्र कार्य विधि का प्रयोग का भारतीय समाजशास्त्र और सामाजिक मानव शास्त्र में अनुभव वादी परंपरा की जड़ों को मजबूत किया है।

घुर्ये ने जाति को एक जटिल घटना बताते हुए इसकी निश्चित शब्दों में बंधी हुई कोई सामान्य परिभाषा नहीं दी है किंतु इनकी शिक्षा विशेषताओं का आवश्यक विश्लेषण किया है यह विशेषताएं हैं -

(1)समाज का खंडात्मक विभाजन

(2) संस्तरण

(3) खानपान और सामाजिक व्यवहार पर प्रतिबंध

(4) विभिन्न जातियों की नागरिक और धार्मिक निर्योग्यताएं तथा विशेषाधिकार

(5) व्यवसाय के स्वतंत्र चुनाव का अभाव

(6) विवाह (अंतर्जातीय) पर प्रतिबंध।

घुर्ये ने जाति के उद्भव के बारे में प्रजाति सिद्धांत का समर्थन किया है जाति के उद्भव के बारे में घुर्ये ने कहा कि जाति प्रणाली इंडो आर्य संस्कृत के ब्राह्मणों का शिशु है जिसका पालन पोषण गंगा के मैदान में हुआ और वहां से इसे देश के दूसरे भागों में लाया गया।

घुर्ये ने जाति को पूर्णता एक विशिष्ट भारतीय घटना नहीं माना है। उन्होंने जाति को एक प्रसिद्ध समूह मानते हुए कहा है कि जन्म उपस्थिति के आधार पर भिन्नताए संसार के अन्य समाजों में भी देखने को मिलती हैं।

जाति में परिवर्तन संबंधी घुर्ये ने तीन प्रमुख धाराओं का उल्लेख किया है - गांधीवादी धारा, सम्मिश्रण और समूहीकरण तथा जाति की समाप्ति की धारा। गांधीवादी धारा के समर्थक जाति को अपने मौलिक वर्ण व्यवस्था के रूप में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र पुनः स्थापित करने के पक्ष में हैं घुर्ये के अनुसार पुरातन चातु वर्ण व्यवस्था का अब पुनः लौटना अव्यवहारिक है। संमिश्रण और सामूहीकरण की दूसरी धारा के अनुसरण करता विद्वान उप जातियों के वर्तमान स्वरूप को आर्थिक और सांस्कृतिक आधार पर वृहत जातियों में समीकरण के पक्ष में है। इस प्रक्रिया द्वारा समान प्रस्तुति वाली जातियां धीरे-धीरे एक होती जाएंगी और अंततः हिंदू समाज जाति विहीन समाज में बदल जाएगा। जाति की समाप्ति की पक्षधर तीसरी धारा जाति के कुछ पक्षों को अत्यंत निकृष्ट और कुछ एक को राष्ट्र विरोधी मानती है। इस विचारधारा के समर्थक विद्वान जैसे (अंबेडकर) जाति को बिना किसी विलंब की जल्दी से जल्दी समाप्त करने के पक्ष में है।

घुर्ये ने जातियों की एकता के लिए उनका मत है कि रक्त सम्मिश्रण आपसी संबंधों को मजबूत करने और राष्ट्रीयता को बढ़ाने का एक प्रभावी उपाय है । इसके लिए उन्होंने अंतर्जातीय विवाहों का सुझाव दिया।

घुर्ये ने जाति व्यवस्था के साथ-साथ आदिवासी जातियों जनजातियों पर भी व्यापक शोध कार्य किया है उन्होंने "अनुसूचित जनजातियां" नामक पुस्तक में भारत के आदिवासी जातियों के ऐतिहासिक प्रशासनिक और सामाजिक आयामों का वर्णन विश्लेषण किया है। 'तथाकथित आदिवासी और उनका भविष्य" में उन्होंने आदिवासियों की समस्याओं का उनके ऐतिहासिक संदर्भ में चर्चा की है।घुर्ये ने भारतीय समाज के साथ-साथ इनके एकीकरण पर जोर दिया है।

घुर्ये ने महाराष्ट्र की एक जनजाति कोली पर संपूर्ण पुस्तक लिखी है। घुरिये भारतीय जनजातियों की समस्याओं के समाधान के रूप में आत्मसात की नीति प्रस्तावित की है, जो नृतत्वशास्त्री एल्विन के "नेशनल पार्क" की नीति से (अलग-थलग की नीति) और जवाहरलाल नेहरू की एकीकरण की नीति (आरक्षण और विकास) से सर्वथा भिन्न है।

घुर्ये ने भारत में बढ़ती हुई नगरीकरण की प्रवृत्ति पर भी प्रकाश डाला है। उनके अनुसार ग्रामीण शहरी करण का मुख्य कारण गांव की स्थानीय आवश्यकताएं रही हैं। सन 1957 में उन्होंने महाराष्ट्र के एक गांव "लोनीकांड" के अपने अध्ययन द्वारा गांव की सामाजिक संरचना की निरंतरता को उजागर किया है।

धर्म के समाजशास्त्र के अपने अध्ययन में घुर्ये ने धार्मिक विश्वास कर्मकांड संस्कार तथा भारतीय परंपरा में साधू की भूमिका पर प्रकाश डाला है इस संबंध में उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। घुर्ये ने भारतीय धर्म में विभिन्न देवी-देवताओं जैसे शिव विष्णु और दुर्गा आदि के उद्भव और उनकी भूमिका का सारगर्भित विवेचन करते हुए पूजा की व्रत स्त्री पद्धति के साथ जुड़े हुए स्थानीय और क्षेत्रीय विश्वासों को उजागर किया है धर्म के समाजशास्त्र से संबंधी उनकी बहुचर्चित एक्कृति भारतीय साधु गण 1953 में सन्यास की दोहरी भूमिका की समीक्षा की है। घुर्ये इस मत से सहमत नहीं थे कि भारत में मुस्लिम स्मारकों में हिंदू और मुस्लिम धर्म दोनों का समन्वय हुआ है। उनका मत था कि मुस्लिम इमारतों में हिंदू कला के तत्वों का केवल अलंकरण के रूप में प्रयुक्त किया गया है

। घुर्ये ने राजनीतिक समाजशास्त्र के विषय में सन 1968 में प्रकाशित पुस्तक " भारत के सामाजिक तनाव " उल्लेखनीय कृति है। घुर्ये के अनुसार देश का विभाजन पृथकतावाद और विशिष्टतावाद के लंबे इतिहास के परिणामों का फल है। राष्ट्रीय एकीकरण के बारे में घुर्ये ने कहा कि कठोर और संभावित बहुलतावादी प्रवृत्तियों के विकास और प्रोत्साहन ने राष्ट्रीय एकीकरण को अब लगभग असंभव बना दिया है और इस समस्या के समाधान के रूप में समग्र एकीकरण का एक आदर्श उपचार के रूप में सुझाव दिया। घुर्ये की कृतियों में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में राष्ट्रवाद स्वाभिमान और भारत के गौरव जैसे विचार और मनोभाव हावी रहे हैं।

प्रमुख कृतियां :-

1- कास्ट एंड रेस इन इंडिया, 1932

2- सेक्स हैबिट्स आप मिडल क्लास पीपल, 1938

3- कल्चर एंड सोसाइटी, 1945

4- आफ्टर ए सेंचुरी एंड क्वार्टर, 1960

5- कास्ट क्लास एंड अक्यूपेशन, 1961

6-फैमिली एंड किन इन इन्डो-यूरेपियन कल्चर, 1962

7- सिटीज एंड सिविलाइजेशन, 1962

8- द शेड्यूल ट्राइब्स, 1963

9- महादेव कोली, 1963

10-इंडियन साधु, 1964

11-रेस रिलेशन इन नीग्रो अफ्रीका

12-सेक्सुअल बिहेवियर आफ दी अमेरिकन फीमेल

13- सोशल टेंशन इन इंडिया, 1968

14 इंडिया रिक्रेट्स डेमोक्रेसी, 1978

15- वैदिक इंडिया, 1979

<u>भारतीय साधु (Indian Sadhus)</u>

_____घुरिये का एक महत्वपूर्ण योगदान भारतीय समाज तथा संस्कृति में भारतीय साधुओं का विश्लेषण करना है। यह विश्लेषण उनके द्वारा प्रस्तुत धर्म के समाजशास्त्र से संबंधित है। घुरिये ने लिखा है कि भारतीय इतिहास की एक लंबी परंपरा में संतों और संन्यासियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय संस्कृति के अनुसार ऐसा समझा जाता है कि साधुओं या संन्यासियों को अपने सांसारिक जीवन, जाति प्रतिमानों तथा भौतिक जीवन से मुक्त होना आवश्यक है। उन्हें समाज के दायरे से बाहर माना जाता है। शैव संप्रदाय से संबंधित साधुओं की एक सामान्य परंपरा यह है कि जब उनके समूह का कोई व्यक्ति या सन्यास या आत्मत्याग के मार्ग को अपनाता है, तो सांसारिक रूप से उनका एक प्रतीकात्मक दाह संस्कार कर दिया जाता है। इसका अभिप्राय है कि वह समाज के लिए मृत हो जाता है लेकिन आध्यात्मिक रूप से उसका पुनर्जन्म होता है। यही वह आधार है जिसके कारण भारत के धार्मिक इतिहास में सन्यासियों की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सन्यासियों के महत्व का उल्लेख करते हुए डॉक्टर राधाकृष्णन ने लिखा है कि भारत के आरंभिक सांस्कृतिक इतिहास से यहां बड़े-बड़े सैनिकों, दार्शनिकों तथा उपदेशों को वह स्थान नहीं मिला जो बड़े-बड़े संतों और संन्यासियों की मूर्तियां स्थापित करके उन्हें दिया गया। घुरिये ने सन्यासियों के रूप में भारतीय साधुओं की भूमिका को स्पष्ट करने के साथ ही उनके विभिन्न प्रकारों तथा विकास की प्रक्रिया का विस्तार से व्याख्या किया है।

<u>हिंदू धर्म में संन्यासियों की भूमिका:-</u>

भारतीय समाज में संन्यासियों को मिलने वाली प्रतिष्ठा और सम्मान सर्वोपरि रहा। घुरिये भारतीय समाज के लिए सन्यासियों द्वारा किए जाने वाले अनेक महत्वपूर्ण कार्यों की विवेचना की। जिससे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उनके योगदान को समझा जा सके।

1- हिंदू धर्म इस अर्थ में अनुपम रहा है कि इसके अंतर्गत व्यक्तियों के धार्मिक व्यवहारों को नियमित करने वाला कोई सुनिश्चित संस्थागत नियम नहीं रहे हैं। सन्यासियों की भूमिका एक ऐसे गुरु के रूप में रही है जो उदारता पूर्वक लोगों का आध्यात्मिक बौद्धिक तथा सामाजिक विकास करने का काम करते रहे इसी कारण हिंदू समाज में संन्यासियों का स्थान बहुत ऊंचा रहा है।

2- घुरिये ने स्पष्ट किया कि जिन व्यक्तियों ने संन्यास लेकर समाज का परित्याग कर दिया तथा वे सामान्य सांसारिक जीवन से अलग हो गए। उन्होंने भी अपने ऐसे संगठनों का निर्माण और विकास किया जिन्होंने उन्हें वृहत हिंदू समुदाय के साथ अर्थपूर्ण रूप में जोड़े रखा।

3- समाजशास्त्रीय आधार पर घुरिये ने स्पष्ट किया कि सन्यासियों के आचरणों पर भी उन प्रतिमानों और नियमों का एक स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है जो जाति आधारित हिंदू सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित थे। प्रोफेसर बी.डी. त्रिपाठी ने भारतीय साधुओं पर किए गए अपने अध्ययन में यह लिखा कि कबीर और दादू संप्रदाय के लोग भी अपने-अपने संगठनों में उच्च वर्णों के लोगों को सम्मिलित करना प्रतिष्ठा की बात समझने लगे।

विभिन्न अवसरों पर भारतीय साधुओं और 4- विभिन्न अवसरों पर भारतीय साधुओं और संन्यासियों का एक महत्वपूर्ण काम धार्मिक विवाद के मामलों में इस तरह मध्यस्थता करना था जिस हिंदू धर्म से संबंधित परंपराओं को प्रभावपूर्ण बनाए रखा जा सके। एक तरह से वे धर्म ग्रंथो के अध्ययन और अध्यापन के संरक्षक के रूप में कार्य करते रहे।

5- यदि हम नागा संन्यासियों को उदाहरण लें तो उन्होंने हिंदू धर्म को हानि पहुंचाने वाले लोगों से संघर्ष करने में विशेष भूमिका निभाई । बंकिम चंद्र चटर्जी का उपन्यास "आनंद मठ" शैव साधुओं की ही एक कहानी है, जिन्होंने 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश फौजियों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष में भाग लिया। यह सच है कि ब्रिटिश फौजियों से पराजित हो गए लेकिन हिंदू धर्म के प्रति उनके इस कार्य से उनकी निष्ठा का पता चलता है।

6- भारत में कुंभ के मेले पर विभिन्न संप्रदायों से संबंधित जो साधु और संन्यासी एकत्रित होते हैं वह पूरे भारत का एक लघु रूप है। यह साधु अलग-अलग क्षेत्र से आते हैं एक दूसरे से भिन्न भाषाएं बोलते हैं, लेकिन इसके बाद भी एक ही धार्मिक व्यवस्था के अंग है। घुरिये के अनुसार, एक ही संस्था के रूप में सन्यास केवल अतीत का अवशेष मात्र नहीं है, बल्कि यह हिंदू धर्म का एक जीवंत पहलू है। आधुनिक युग में भी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, अरविंद जैसे प्रसिद्ध संन्यासियों ने हिंदू धर्म को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ग्राम्य-नगरीय समुदाय (RURURBAN COMMUNITY)

जी.एस. घुरिए ने सन् 1963 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "RURURBAN COMMUNITY "में क्षेत्र कार्य के आधार पर ग्राम तथा नगर की संरचनात्मक विशेषताओं को स्पष्ट किया। इसके साथ ही उन्होंने उन परिवर्तनों का भी विश्लेषण किया जो स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण नगरीय जीवन में स्पष्ट होने लगे थे। आरंभ में ध्यान

रखना आवश्यक है कि भारत में अंग्रेजी शासन काल के अंतर्गत होने वाले स्वतंत्रता आंदोलन के समय से ही ग्रामीण जीवन की संरचना को ध्यान में रखते हुए इसमें परिवर्तन और विकास के प्रयत्न होना आरंभ हो चुके थे। इस संदर्भ में अनेक पश्चिमी और भारतीय लेखकों ने ग्रामीण जीवन की संरचना का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण जीवन से संबंधित अध्ययन समाजशास्त्रीय क्षेत्र कार्य का एक विशेष अंग बन गए। 20वीं शताब्दी के आरंभ से ही नगरीय समुदाय से भी संबंधित अनेक अध्ययन पश्चिम और भारतीय विद्वानों द्वारा किए गए थे, लेकिन ब्रिटिश शासन के अंतर्गत इनका मुख्य आधार प्रशासनिक था। स्वतंत्रता के बाद जैसे-जैसे नगरों का विस्तार होने लगा तथा ग्रामीण क्षेत्र से नगरी क्षेत्र की ओर जनसंख्या का प्रवास होना आरंभ हुआ। नगरीय संरचना में अनेक ऐसे परिवर्तन स्पष्ट होने लगे जिनके लिए वस्तुनिष्ठ तथा आनुभाविक अध्ययनों की आवश्यकता थी। प्रोफेसर घुरिए ने ग्रामीण तथा नगरीय समुदाय के विवेचना के लिए "रूरल अर्बन" शब्द का प्रयोग न करके RURURBAN शब्द का प्रयोग किया । वास्तव में RURURBAN का हिंदी रूपांतरण ग्राम्य-नगरीय के रूप में किया जा सकता है। ग्राम्य-नगरीय शब्द का तात्पर्य एक ऐसी दशा व संरचना से है जिसमें गांव तथा नगर की विशेषताओं का एक मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। इसका तात्पर्य है कि प्रोफेसर घुरिए ग्रामीण और नगरीय समुदाय को पूरी तरह एक दूसरे से भिन्न मानने के पक्ष में नहीं थे, बल्कि उनका उद्देश्य ग्रामीण और नगरीय संरचना के बीच पाई जाने वाली निरंतरता को स्पष्ट करना था। इस निरंतरता को अनेक लेखकों तथा विशेष रूप से विर्थ ने ग्रामीण-नगरीय सआतत्य (Rural urban continuum) की अवधारणा के रूप में स्पष्ट किया। वही घुरिये ने इसके लिए अनेक स्थानों पर ग्रामीण शहरीकरण अथवा ग्राम्य-नगरीय शब्द का प्रयोग किया।

घुरिये ने किसी न किसी रूप में अपने जीवन भर भारत के ग्रामीण और नगरीय जीवन के संबंधों तथा इनसे जुड़ी हुई समस्याओं पर विचार किया। उनका मानना था कि ब्रिटिश शासन काल में नगरों और गांवों के बीच संबंध बढ़ाने के लिए किसी प्रकार के प्रयत्न नहीं किए गए। नगरों को केवल ऐसे व्यापारिक केन्द्रों के रूप में विकसित किया गया, जहां गांव से मिलने वाले कच्चे माल को एकत्रित करके उन्हें इंग्लैंड भेजा जा सके तथा तैयार वस्तुओं को विदेशों से मंगवा कर नगरों के माध्यम से उनके उपभोग में वृद्धि की जा सके।

घुरिये ने ग्रामीण तथा नगरीय समुदाय को एक दूसरे से संबंधित मानने के बाद भी कुछ ऐसी विशेषताओं का उल्लेख किया, जो इन दोनों समुदायों को कुछ सीमा तक एक दूसरे से पृथक करती हैं, लेकिन यह पृथकता दो ध्रुवों के रूप में न होकर केवल तुलनात्मक अंशों में होती है।

ग्रामीण-नगरीय निरन्तरता (RURAL-URBAN CONTINUITY)

घुरिये ने लोचपूर्ण स्तरीकरण को भी नगरीय समुदाय की एक प्रमुख विशेषता बताते हुए नगरीय और ग्रामीण समुदाय की तुलना की। नगरों में व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति और सम्मान का निर्धारण उसकी जाति या वंश के आधार पर न होकर शिक्षा, आर्थिक स्थिति, राजनीतिक अधिकारों तथा व्यवसाय की प्रकृति के आधार पर होने के कारण सामाजिक स्तरीकरण की प्रकृति बहुत कुछ खुली हुई रहती है, जिसमें कभी भी परिवर्तन हो सकता है। इसके बाद भी यह ध्यान रखना आवश्यक है की नगरीय सामाजिक संरचना का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता है ।एक ही नगर के विभिन्न हिस्सों में सामाजिक स्तरीकरण की प्रकृति भिन्न हो सकती है

प्रोफेसर जी.एस. घुरिये ने ग्रामीण तथा नगरीय समुदाय की विभिन्न विशेषताओं को केवल एक मॉडल के रूप में ही स्वीकार किया है। उनका विचार है कि इन दोनों समुदाय की विशेषताओं को हम केवल एक ही प्रतिमान के रूप में स्पष्ट कर सकते हैं, लेकिन इनके आधार पर ग्रामीण और नगरीय जीवन को एक दूसरे से पूरी तरह पृथक नहीं किया जा सकता । घुरिये ने अनेक ऐसे परिवर्तनों का उल्लेख किया है जो नगरीय तथा ग्रामीण जीवन में स्पष्ट होने लगे हैं। ग्रामीण-नगरीय सातत्य अथवा ग्राम्यनगरीकरण के रूप में ग्रामों में कृषि का उद्देश्य केवल उपभोग नहीं होता, बल्कि इसमें लाभ की प्रवृत्ति जुड़ जाने से आर्थिक प्रतियोगिता को महत्व बढ़ने लगा है। लोकतांत्रिक संरचना में जब विभिन्न राजनीतिक दल अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं तब उनके लिए ग्रामीण क्षेत्र का महत्व नगरीय क्षेत्र से अधिक हो जाता है। इसके फल स्वरुप ग्रामों में भी नगरों की तरह राजनीतिक गुटबंदी का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। अधिकांश गांवों में अब विभिन्न धार्मिक जातियों और आर्थिक स्थिति के लोग साथ-साथ रहते हैं , जिसके फलस्वरुप यहां की सामाजिक संरचना में विषमरूपता बढ़ती जा रही है। विभिन्न विकास कार्यक्रमों के फल स्वरुप ग्रामीण समुदाय में परंपरागत मूल्यों की प्रति निष्ठा में कमी हुई है। विभिन्न अनुष्ठानों और कर्मकांडों के प्रभाव में कमी होने के साथ ही ग्रामीण समुदाय में भी नवाचारों के रूप में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बढ़ने लगी है। इसी संदर्भ में प्रोफेसर घुरिए ने ग्रामीण और नगरीय समुदायों की पारस्परिकता को ग्राम्य-नगरीकरण शब्द से संबोधित किया है।

प्रोफेसर घुरिए ने संस्कृति तथा समाज, विभिन्न देशों में प्रजातीय संबंधों, जनजातियों में परिवर्तन की प्रक्रियाओं तथा नगरी सभ्यता के बारे में भी अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये । समाजशास्त्र में उनके इसी योगदान को ध्यान में रखते हुए रॉबर्ट मर्टन ने लिखा है कि प्रोफेसर घुरिए ने समाजशास्त्र के लिए जो कार्य किया उसके लिए उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। वह वास्तव में समाजशास्त्रीय रचनात्मकता के प्रतीक हैं।